लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाओं की शैक्षणिक उपयोगिता

□ डॉ० महेन्द्र भानावत

(उप-निदेशक, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर—राजस्थान)

लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाओं की शैक्षणिक उपयोगिता का प्रश्न हममें से कइयों को चौंका देने वाला है क्योंकि हमने इन कलाओं को, ये जिस रूप में हैं उसी रूप में देखा है। हमारा नजरिया इनके प्रति घोर पारम्परिक व रूढ़िवादिता से ग्रसित रहा इसलिए हमने कभी यह नहीं सोचा कि ये कलाएँ हमारे जीवन के शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। विशिष्ट वार-त्यौहारों, मंगल-उत्सवों तथा शुभ-संस्कारों पर इन कलाओं को मात्र प्रदर्शित कर ही हम अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते रहे, नतीजा यह हुआ कि ये कलाएँ धीरे-धीरे एक खाना-पूर्ति और रस्म अदायगी तक सीमित हो गईं। इसलिए इनका चेतन जीवन रूप और सौन्दर्य फीका पड़ने लगा, फलतः बहुत सारी कलाएँ अपने मूल रूप को ही खो बैठीं। रह गया उनका टूँटियाई रूप जिससे कभी-कभी तो उनकी असलियत का पता लगाना ही मुश्किल हो गया।

कलाओं का पिछड़ापन

इसका एक कारण तो यह था कि हमने इन कलाओं को पिछड़ी जातियों की धरोहर समझकर इन्हें हीन दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि इनसे हम लोग मनोरंजित अवश्य होते रहे परन्तु इन्हें छूआछुत की वस्तु समझकर इनको कभी उचित सत्कार और आदर का दर्जा देने की भावना मन में नहीं लाये। इसलिए ये कलाएँ उन कलावंतों तक सीमित रह गईं जिनका परिवार और पूरी गृहस्थी इनके साथ बँधी हुई थी और जिनके बलबूते पर उनकी पीढ़ियों का गुजर-बसर चला आ रहा था। विशिष्ट संस्कारों और वार-त्यौहारों पर अपने यजमान के घर जाते, प्रदर्शन करते और बदले में बंधा-बंधाया नेगचार प्राप्त कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते। इसलिए इन लोगों ने अपनी कलाओं में इतनी दिलचस्पी और दक्षता प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया और न इन्हें इसकी आवश्यकता ही महसूस हुई।

कलाओं के विविध रूप

आजादी के बाद इन कलाओं एवं कलाकर्मियों के प्रति इन सबका नजरिया बदला। निम्न जातियों के उन्नयन एवं विकास के कई सोपान बने। समाजवादी विचारधारा ने बल पकड़ा, फलतः प्रदर्शनकारी कलाओं के विविध रूप भी लोगों की नजरों में आ समाये। इनके सर्वेक्षण-पर्यवेक्षण प्रारम्भ हुए। अनेक कलापिपासु, अनुसन्धित्सु और विद्वान इन कलाओं के अध्ययन-उपयोग हेतु जुट पड़े। उन्हें इन कला-रूपों में लोकमानसीय संस्कृति के ऐसे विराट रूप देखने को मिले जिनके आधार पर उनके लिए यह खोज निकालना आसान हो गया कि हमारे जीवन-संस्कारों के लिए इन कलाओं को कितनी शैक्षणिक उपयोगिता है और लोकजीवन के साथ इनका कितना गहरा तादात्म्य है। इन प्रदर्शनकारी कलाओं में मुख्यतः नृत्य, कावड़, पड़ तथा पुतलीकला के शैक्षणिक प्रयोग एवं उपयोग पर शिक्षाशास्त्रियों तथा कलाविदों के निकष कई एक महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं।

शैक्षणिक नृत्य

हमारे देश में ऐसे बहुत से नृत्य हैं जिनका सामुदायिक शैक्षणिक उपयोग किया जा सकता है। यह प्रयोग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बच्चों की उम्र तथा उनकी शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। यूरोप के अनेक देशों में इस ओर अनेक प्रयोग हुए हैं। हमारे यहाँ भी विशिष्ट समारोहों एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए इस प्रकार के नृत्यों का समावेश प्रारम्भ होने लगा है। पिछले दिनों एक स्कूल में मैंने छोटे-छोटे बच्चों का एक सांस्कृतिक कार्यक्रम देखा जिसमें उन्होंने "Here we dancing dancing" गीत पर बड़ा ही मनोहारी नृत्य प्रस्तुत किया था। ये बच्चे आठ-आठ, दस-दस वर्ष से अधिक बड़े नहीं थे।

इन सामुदायिक नृत्यों के साथ व्यायाम का पुट अत्यन्त आवश्यक है। इससे एक ओर जहाँ बच्चों के शारीरिक अवयव पुष्ट होंगे वहाँ उन्हें व्यर्थ की उछल-कूद से मुक्त होकर तालबद्ध संगीत में रहकर सार्थक क्रियाएँ करने में आनन्द की अनुभूति भी होगी। इसके लिए शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह इन सारी चीजों से भली प्रकार परिचित हो अन्यथा गलत नृत्य-संगीत और पदचापों से बच्चों का अंग-सौष्ठव बिगड़ जायगा। उनकी चाल-ढाल ठीक नहीं होने से उनमें गलत आदतों का समावेश होने लगेगा और उनकी भावनात्मक पृष्ठभूमि, कल्पना और रंगीनियों के शतदल की बजाय भौंडी और कंटीली झाड़ियों की तरह उलझन भरी नजर आने लगेगी।

हमारे देश के विभिन्न राज्यों में प्रचलित ऐसे अनेक सामूहिक नृत्य हैं जो जनशिक्षण की दिशा में सहायक हो सकते हैं। इनमें राजस्थान का गेर, घूमर; गुजरात का गरबा, रास; उत्तर प्रदेश का कजरी; आन्ध्र का बणजारा; मणिपुर का लाहिरोबा तथा आदिवासियों के नृत्य मुख्य हैं। राजस्थान का घूमर नृत्य किसी समय राजघरानों की देहलीज तक सीमित था परन्तु अब यही नृत्य स्थान-स्थान पर सामूहिक रूप से मनाये जाने वाले गणतन्त्र दिवस की शोभा बना हुआ है। दिल्ली में हजारों-हजार नागरिकों के सन्मुख भी इस नृत्य ने अपनी विशिष्टताओं द्वारा राष्ट्र के रंग में कई अनोखे रंग भरे हैं। ये नृत्य जीवन की विषमताओं एवं संकीर्णताओं को दूरकर जनजीवन में स्वस्थ भावनाओं की वृष्टि करते हैं।

शिक्षात्मक कावड़पाट

कावड़ लकड़ी के विविध पाटों का बना एक चित्र-मन्दिर होता है। ये पाट एक दूसरे से जुड़े रहते हैं जो आवश्यकतानुसार खोल दिये जाते हैं अन्यथा पाटों को बन्द करने से एक छोटा सा पिटारा बन जाता है। इन पाटों के दोनों ओर विविध धार्मिक एवं शिक्षात्मक जीवनोपयोगी चित्र चित्रित होते हैं। कावड़रक्षक कावड़िया भाट इसे अपनी बगल में दबाये एक गाँव से दूसरे गाँव जाता है और एक-एक पाट को खोलता हुआ तत्सम्बन्धी चित्र को बड़ी सुन्दर लयकारों में विवेचित करता है और बदले में धान-चून प्राप्त कर अपनी गृहस्थी चलाता है। अब तक इस कावड़ का केवल यही उपयोग था परन्तु अब बाल्य एवं प्रौढ़ शिक्षण में इसका उपयोग बड़ा लाभकारी सिद्ध हुआ है।

इसके अनुसार प्रारम्भ में किसी विषय अथवा कथा-कहानी को ले लिया जाता है। उसके बाद उस कहानी के आधार पर कावड़पाट पर अच्छे खूबसूरत चित्र कोर लिये जाते हैं। आवश्यकता होने पर प्रत्येक चित्र के नीचे ही उसका संक्षिप्त विवरण भी लिखवा लिया जाता है और तब एक-एक पाट का समूह-वाचन दे दिया जाता है। इससे प्रत्येक विद्यार्थी को समझने-सुनने में बड़ी आसानी रहती है। साथ ही शिक्षक जो कुछ कहना चाहता है, वह, लड़के चित्रों के माध्यम से जब उसका साक्षात्कार कर पाते हैं तो उसका, उनके मन-मस्तिष्क में स्थाई रूप से असर बैठ जाता है और वह चीज जल्दी ही उनके समझ में आ जाती है। इस प्रकार एक कावड़ द्वारा कई कविताएँ तथा कहानियाँ पढ़ाई जा सकती हैं। इसका पठन-पाठन सरल तथा संवादमूलक भी हो सकता है। नाटक तथा काव्य खण्ड भी कावड़ के माध्यम से रोचक तथा सरलतापूर्वक पढ़ाने जैसे बनाये जा सकते हैं।

पड़ का उपयोगी पक्ष

कावड़ की ही तरह एक पड़-रूप और प्रचलित है जिसके माध्यम से भी शिक्षण का अच्छा प्रचार-प्रसार किया जा सकता है। इसके जरिये कावड़ से भी अधिक व्यक्ति एक साथ शिक्षित किये जा सकते हैं। यह पड़ एक लम्बा कपड़ा होता है, जिस पर किसी घटना-चरित्र से सम्बन्धित चित्र कोरे हुए होते हैं। पड़ बाँचने वाला भोपा दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बांसों के सहारे पड़ को जमीन से फैला देता है और उसमें चित्रित प्रत्येक चित्र का गाथा के साथ वाचन करता है। यह पड़ दो-ढ़ाई मीटर चौड़ी से लेकर सात-आठ मीटर तक की लम्बाई लिए होती है। पाबूजी का भोपा इस पड़ को लेकर गाँवों में अपने भक्त-श्रद्धालुओं के समक्ष रात-रात भर गाथा-गीतमय वाचन करता रहता है। सारा का सारा गाँव उसे सुनने के लिए उमड़ पड़ता है। भोपा अपनी प्रभावशाली गायकी में नृत्य कदम भरता हुआ इस पड़ के प्रत्येक चित्र को वाचित करता जाता है। भोपे के साथ उसकी पत्नी भोपिन रहती है जो उसे गायकी में सहायता करती है। इसके हाथ में एक दीवट रहती है जिसके माध्यम से वह रात्रि में सम्बन्धित पड़-चित्रों को उजास देती रहती है।

यह पड़ दो तरह से उपयोगी है। एक तो उसका बड़ा रूप जिस पर किसी महापुरुष अथवा महाख्यान या किसी विशिष्ट चरित्र का समग्र चरित्र चित्रित कराया जा सकता है या फिर इसके छोटे-छोटे टुकड़ों में छोटे-छोटे कथानक, कहानी-किस्से, घटना-प्रसंग विषयक चित्र बनवाकर उन्हें शिक्षोपयोगी रूप दिया जा सकता है। भगवान महावीर के २५००वें निर्वाण प्रसंग पर भीलवाड़ा के संगीत कलाकेन्द्र ने भगवान महावीर से सम्बन्धित एक पड़ का सुन्दर चित्रण-प्रदर्शन महावीर की शिक्षा-दीक्षा तथा उनके जीवनोपयोगी प्रेरक प्रसंगों से हजारों लोगों को परिचित, प्रेरित और शिक्षित कर बोधगम्य बनाया।

कठपुतलियों द्वारा जनशिक्षण

कठपुतलियाँ तो सर्वाधिक रूप में जनशिक्षण का सशक्त माध्यम रही हैं। यहाँ की कठपुतलियों के शैक्षणिक पक्ष को तब तक हमने नहीं पहचाना जब तक कि हमारे कुछ कठपुतली-विशेषज्ञ यूरोप के विविध देशों में होने वाले कठपुतली प्रयोगों को न देख आये। यूरोप और अमेरिका में कठपुतली अब केवल मनोरंजन की ही साधन नहीं रही, उसका उपयोग विविध शैक्षणिक स्तरों पर भी होने लगा है। हमारे देश में भी यद्यपि कठपुतलियाँ अब तक बच्चों के शिक्षण में सीधी प्रयुक्त नहीं हुईं फिर भी समाजशिक्षण में और पुरातन संस्कृति के विशिष्ट तत्त्वों को जनता जनार्दन को हृदयंगम कराने में उपयोगी बनती रही हैं।

विदेशों में पुतली-शिक्षण

यूरोप में आज से पच्चीस वर्ष पूर्व बच्चों के शिक्षण में पुतलियों का प्रवेश सर्वप्रथम इंग्लैण्ड में हुआ। इसके नेता थे लंदन के श्री फिलपोट, जार्ज स्पिएट तथा इटली की श्रीमती मेरिया सिम्नोरली। इधर अमेरिका में डा० मार्जरी मेकफेलरल ने बच्चों की शिक्षा में पुतलियों का अच्छा प्रयोग किया। यूरोप के पूर्वी देशों में जिनमें, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी, हंगरी, ग्रीक तथा रूस सम्मिलित हैं, पुतलियों का शैक्षणिक उपयोग इतना महत्त्व प्राप्त नहीं कर सका। इन देशों में अन्य कलाओं के साथ-साथ पुतलियों को एक स्वतन्त्र कला के रूप में माना गया। कला की अन्य रंगमंचीय विधाओं के अनुरूप ही पुतलियों की एक समृद्ध रंगमंचीय विधा विकसित हुई और उसमें अच्छे नाट्यों की रचना की गयी। कठपुतलियों का एक शास्त्र विकसित हुआ और उनके विशिष्ट नाट्यतत्त्वों पर खोज की गयी। इन देशों में कठपुतलियों के माध्यम से विज्ञापन आदि का भी काम लिया गया। सर्वप्रथम पूर्वी जर्मनी में और उसके पश्चात् रूस के कुछ स्कूलों में कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने बालशिक्षण में हस्तकौशल के रूप में पुतलियों का प्रयोग किया गया।

कुछ बालपुतली विशेषज्ञों ने बच्चों के योग्य पशु-पक्षियों और परियों की कहानियों के आधार पर पुतली-नाट्य तैयार कर उनको मनोरंजन का माध्यम प्रदान किया। तदुपरान्त कुछ स्कूलों में बच्चों द्वारा कठपुतलियाँ बनाने का काम भी प्रारम्भ हुआ। स्वयं बच्चों द्वारा कहानी कथन आदि करवाया गया। धीरे-धीरे पुतलियों का यह प्रयोग और जोर पकड़ता गया। फलतः पूर्व के सभी देशों में कठपुतली बालशिक्षण का प्रबल माध्यम बन गया। इंग्लैण्ड में फिलपोट ने शैक्षणिक पुतलियों के अनेक प्रयोग किये। बच्चों के विकास के साथ-साथ उनकी दबी हुई मानसिक उलझनों को खोजने में भी पुतलियों ने बड़े मार्के का काम किया। इटली में तो कुछ स्कूल ऐसे भी हैं जिनमें पुतलियों के माध्यम से सभी विषयों की शिक्षा देने की योजना है। फ्रान्स, जर्मनी, रूस, इंग्लैण्ड, चेकोस्लावाकिया आदि देशों में पुतलियों का प्रयोग मानसिक रोगियों के उपचार में भी किया जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलामण्डल के पुतली-प्रयोग

हमारे देश में कठपुतलियों के शैक्षणिक उपयोग की दिशा में पद्मश्री देवीलाल सामर ने अपने विश्वप्रसिद्ध भारतीय लोककला मण्डल में अनेक उपयोगी और महत्त्वपूर्ण प्रयोग किये हैं। ये प्रयोग यहाँ के गोविन्द कठपुतली प्रशिक्षण केन्द्र में गत ६ वर्षों से बराबर होते रहे हैं। राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात, मध्यप्रदेश, हरियाणा, पंजाब आदि राज्यों के कलाकार-अध्यापक यहाँ प्रशिक्षित हो चुके हैं। विदेश के भी कई पुतली-प्रेमी यहाँ तीन-तीन चार-चार माह रहकर पुतली-प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। बालशिक्षण के साथ प्रौढ़शिक्षण की दृष्टि से भी इस केन्द्र में कुछ अच्छे प्रयोग किये गये हैं। जनशिक्षण में पुतलियाँ अधिकाधिक कारगर सिद्ध हों इसलिए परिवार नियोजन, हड़ताल, प्रौढ़शिक्षा, अल्प-बचत, भावात्मक एकता, साक्षरता, जैसे विषयों पर यहाँ के पुतली-नाट्यों ने सारे देश में नाम पाया है। यहाँ के प्रयोगों से प्रभावित होकर राजस्थान के हायर सैकण्डरी बोर्ड ने कठपुतली को ९वीं-१० वीं कक्षा में एक विषय के रूप में मान्यकर यहाँ के प्रशिक्षण केन्द्र को इस प्रशिक्षण के लिए मान्यता प्रदान की है।

जनशिक्षण में इन कलाओं की उपयोगिता निःसन्देह असन्दिग्ध है परन्तु इन्हें शिक्षोपयोगी बनाने के लिये कला का एक विशिष्ट नजरिया आवश्यक है। यह नजरिया प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में नहीं होता। इसके लिए किसी ऐसे कलाविद् का सहयोग हो जो कला के साथ-साथ शिक्षण-प्रशिक्षण का भी पर्याप्त अनुभव रखता हो अन्यथा ये कलाएँ अपने मूल सौन्दर्य को भी खो देंगी और जनशिक्षण के बजाय शिक्षा का अनर्थ करने में कोई कसर नहीं रखेंगी। □

□ सुवचन

वाग् वै शबली

—ताण्ड्य महाब्राह्मण २१।३।१

वाणी काम धेनु है।

नाना वीर्याण्यहानि करोति

—ताण्ड्य महाब्राह्मण २१।९।७

सत्पुरुष अपने जीवन के प्रत्येक दिन को विविध सत्कार्यों से सफल बनाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org